षष्ठ अध्याय

तुलसी काव्य में संस्कृति का स्वरूप

तुलसी काव्य में संस्कृति का स्वरूप

संस्कृति किसी जाति या राष्ट्र की आत्मा है। आजकल संस्कृति शब्द अत्याधिक लोकप्रिय होता जा रहा है। समाज–सुधारक, राजनैतिक नेता, धर्माधिकारी और साधारण शिक्षित नागरिक भी आज संस्कृति के विषय में कुछ कहते हुए पाये जाते हैं, किन्तु यह शब्दों जितना जनप्रिय हो गया है। इस शब्द को निश्चित शब्दों के बन्धनों में बाँधना सरल नहीं है, क्योंकि इस शब्द (संस्कृति) में अनेक भावों का सम्मिश्रण है। श्री रामनाथ सुमन ने सम्मेलन पत्रिका में 'लोक संस्कृति' अंक के सम्पादकीय लेखन में इसको 'ब्रह्म' की भाँति अवर्णनीय बताया है। "संस्कृति ब्रह्म की भाँति अवर्णनीय है। वह व्यापक है, उसके तत्वों का बोध कराने वाली जीवन की विविध प्रवृत्तियों से सम्बन्धित है। अतः विविध अर्थों एवं भावों में उसका प्रयोग होता है। इस प्रकार यह एक पकड़ में न आने वाला शब्द बन गया है।"[1]'जाति का सामुहिक, आचार–विचार, खान–पान, वेशभूषा, धर्म, दर्शन, विश्वास, रहन–सहन , विचार, सिद्धान्त और जीवन के प्रति दृष्टिकोण ही जीवन का अंग या संस्कार का रूप धारण संस्कृति कहलाता है।"[2]

संस्कृति किसी समाज अथवा जाति के वे कर्म विशेष होते हैं, जिनसे उसकी रूचियाँ तथा गुणों तथा भावों का अवलोकन किया जाता है। संस्कृति की शिक्षा–दीक्षा अर्थात् संस्कारों से युक्त मानव का जीवन सुधर जाता है। और वह उन्नत बनता है अपने जीवन तथा आचरण को विशेष परिष्कृत कर लेने पर ही व्यक्ति शिष्ट अथवा सुसंस्कृत कहलाता है। भारत के प्रसिद्ध राजनैतिक और श्रेष्ठ विचारों से परिपूर्ण लेखक श्री जवाहरलाल नेहरू, 'दिनकर' द्वारा लिखित संस्कृति' के चार अध्याय' नामक पुस्तक की प्रस्तावना में संस्कृति की परिभाषा देते हुए संस्कृति को राष्ट्रीय जीवन उन्नायक तथा जाति के मौलिक एवं विशिष्ट गुण बतलाते हैं– 'संस्कृति' है क्या? स्त्रोतों के अध्ययन से संस्कृति की अनेक परिभाषाएँ मिलती हैं। लेखक का कहना है कि " संसार भर में जो भी सर्वोत्तम बातें जानी जानी या कही गईं हैं, उनसे आपको परिचित कराना संस्कृति है।" एक दूसरी परिभाषा में यह कहा गया है कि " संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढ़ीकरण या विकास अथवा उससे उत्पन्न अवस्था है।" यह मन,आचार, अथवा रूचियों की परिष्कृत या शुद्धि है।"[3]

'संस्कृति' शब्द का लक्ष्यार्थ, धर्म, विद्या आदि की उन्नति है, परन्तु वाक्यार्थ संस्कृत शुद्ध करने की क्रिया है। प्राक्त वस्तु किसी स्थूल धातु से सूक्ष्म शुद्ध तत्व निकालने की क्रिया का नाम संस्कृति है। एक हरी मिट्टी को संस्कृत करने से भास्वत ताम्र मिल जाता है। वैसे ही मनुष्य जाति के स्थूल धातु से संस्कृति द्वारा उत्तम मानसिक एवं सामाजिक गुण प्रादुभूर्त होते हैं। अतः संस्कृति के सम्बन्ध में निर्विवाद रूप से इतना तो कहा जा सकता है कि– **कस्यापि दैशस्य समाजस्य वा विभिन्न जीवनव्यापारेषु सामाजिक सम्बन्धेषु वा मानवीय दृष्टया प्रेरणाप्रदानां ततदर्शानं समीष्टरेव संस्कृतिः। वस्तुतस्वस्यामैव सर्वस्यापि सामाजिक जीवनस्यौत्कर्षः पर्यवस्यति। तथैव तुल्या विभिन्न सभ्यातानामुत्कर्षः समैदायं।**[4] संस्कृति किसी जाति अथवा समाज के उन संस्कार विशेषों का नाम है जो कि मनुष्य के आदर्श–जीवन में आर्दशों की छाया भर देते हैं। तभी तो प्रत्येक जाति को अपनी संस्कृति पर गर्व होता है। श्री रामनाथ 'सुमन' सम्मेलन–पत्रिका के लोक संस्कृति अंक के सम्पादकीय लेख तथा 'कल्याण' के 'हिन्दू संस्कृति अंक' के 'भारतीय संस्कृति की मूलधारा' लेख में संस्कृति की परिभाषा देते हुए उसे जातीय आर्दश बतलाते हैं– " संस्कृति किसी देश या जाति की आत्मा है। इससे उसके उन सब संस्कारों का बोध होता है, जिसके सहारे वह अपने सामूहिक जीवन के आर्दशों का निर्माण करता है। यह विशिष्ट मानव समूह के उन उदात्त गुणों को सूचित गुणों को सूचित करती है, जो मानव जाति में सर्वत्र पाये जाने पर भी उस समूह की विशिष्टता प्रकट करते हैं और जिन पर उनके जीवन में अधिक जोर दिया जाता है।"[5]

संस्कृति का अंग्रेजी अनुवाद कल्चर है। इस शब्द में भी गुणों के परिमार्जन का भाव निहित है, मूल शब्द में 'कल्ट' (Cult) या 'कल्टीवेट (Cultivate) का अर्थ होता है खेती करना या फसल उगाना। जिस प्रकार फसल उगाने के लिए पहले खेत को साफ करके और भूमि को जुताई आदि साधनों के द्वारा बीज विपणन के बाद योग्य बनाया जाता है। फिर किसान उस भूमि में घास–फूस अथवा निरर्थक कंटीली झाड़ियों के स्थान पर मनोवांछित खेती तैयार करता है, उसकी प्रकार संस्कृति एक ओर मानव के पशु भावों–घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, असहिष्णुता को समाप्त करती है और दूसरी ओर उनके हृदयों में दया–प्रेम , परोपकारिता, सेवा, त्याग एवं सहिष्णुता के बीच बोती है। यही कारण है कि एक संस्कृत शिष्ट व्यक्ति अपनी अपेक्षा दूसरे का ध्यान अधिक रखता है जबकि असंस्कृत मानव केवल अपनी ही चिन्ता करता है। अतः हम कह सकते हैं कि

संस्कृति श्रेष्ठ गुणों से परिपूर्ण है। संस्कृति के स्वरूप के सम्बन्ध में कह सकते हैं कि संस्कृति सार्वभौम सत्य है ओर उसका स्वरूप एक ही होता है। संस्कृति मानव जीवन को प्रभावित करती है वह उसे सबल साधनों में से है जो अपने निकट आने वाले प्रत्येक मनुष्य को प्रायः सही दिशा की ओर बढ़ाती है। हमारे लिए यह नितान्त आवश्यक है कि पहले हम संस्कृति के स्वरूप पर दृष्टि ड़ालें क्योंकि संस्कृति को स्पष्ट किये बिना अध्ययन पद्धति का स्पष्टीकरण सम्भव नहीं जान पड़ता। अतः सर्वप्रथम हमारे लिए संस्कृति को समझना आवश्यक है। संस्कृति और सभ्यता दोनों का इतना घन्ष्ठि सम्बन्ध है कि यदि हम एक पर विचार करते हैं तो दूसरे को भूला नहीं सकते है। 'संस्कृति और सभ्यता' इन दोनों शब्दों का प्रयोग भिन्न–भिन्न अर्थों में हुआ है लेकिन आमतौर पर ये दोनों मनुष्य की प्रगति तथा उपलब्धियों को संकेतित करते हैं। विद्वानों में इन शब्दों को लेकर बहुत जटिल तथा विवादस्पष्द स्थिति रही है ब्रानिस्ला मैलिनावसकी उनका अलग–अलग अस्तित्व स्वीकार करते हैं उनके अनुसार ऊँची संस्कृति के खास पहलू को सभ्यता कहते हैं।[6] साथ ही नरविज्ञानी टायलर संस्कृति तथा सभ्यता को पयार्यवाची मानते हैं।[7] संस्कृति का स्वरूप डा0 बलदेव प्रसाद मिश्र के विचार से और भी स्पष्ट हो जाता है। उनके अनुसार 'संस्कृति' है मानव जीवन की सजी सवरी हुई अन्तःस्थिति । वह है मानव समाज की परिमार्जित मति, रूचि और प्रवृत्ति पुंज का नाम।[8] अतः संस्कृति का तात्पर्य संस्कार सम्पन्नता संशुद्विकरण अथवा मानव की सुधरी हुई स्थिति से है। व्यक्तिगत एवं सामुहिक दृष्टियों से उपयुक्त आचरण एवं परिष्कृत जीवन वाला व्यक्ति ही सुसंस्कृत कहलायेगा।

'संस्कृति का अर्थ :–

संस्कृति शब्द विविध अर्थों का द्योतक और वाहक है। इसका मानव जीवन के विविध क्रिया–कलापों में, उनके सही सामाजिक स्वरूपों और मानवता को सही दिशा प्रदान करने वाले तत्वों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह व्यक्ति की परम्परा के संदर्भ में मूल्यांकन करने में सहायक सिद्ध होती हैं संस्कृति देश–काल और स्थान का प्रमुख विभेदक स्वरूप है। इसकी तुलना उस स्रोतवाहिनी से की जाती है जो अपने परिवर्तन और मोड़ से अपने मार्ग का निर्माण करके बहुजन हिताय और बहुजन–सुखाय सिद्ध हुई है। इसी को दृष्टि पथ में रखते हुए लोगों ने इसे कई रूपों में व्याख्यायित करने का प्रयत्न किया है।

श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती का मत है कि 'संस्कृति' शब्द 'क ' धातु से भूषण अर्थ में सुट, का आगम करने पर बना है, जिसका अर्थ है भूषण भूत सम्यक कृति या चेष्टा। अतः जिन चेष्टाओं द्वारा मनुष्य अपने जीवन के समस्त क्षेत्रों में उन्नति करता हुआ सुख और शान्ति प्राप्त करता है, वे ही संस्कृति कही जा सकती हैं अथवा 'मनुष्य के लौकिक–पारलौकिक, सर्वाभ्यूदय के अनुकूल आचारों विचारों को संस्कृति कहा जा सकता है।[9] संस्कृति शब्द का सम उपसर्ग पूर्वक (ई कृ (ञ) धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ साफ या परिष्कृत करना है।[10] "वृहत हिन्दी कोष " में शुद्धि, सुधार, परिष्कार, निर्माण तथा पवित्रीकरण को संस्कृति कहा गया है।[11]संस्कृति शब्द की एक अन्य व्यूत्पत्ति एवं अर्थ इस प्रकार भी प्राप्त है– संस्कृति शब्द 'सम' उपसर्ग पूर्वक "कृ" धातु से "सुट" प्रत्यय का आगम तथा 'चिन्तन' प्रत्यय लगाकर बनता है, जिसका शाब्दिक अर्थ– संशोधन करना,, 'सुधारना', श्रेष्ठ करना, ' सुन्दर या पूर्ण बनाना अथवा परिष्कार करना होता है।[12] अंग्रेजी साहित्य में 'संस्कृति' के लिए 'कल्चर' शब्द का प्रयोग होता है। यह 'कल्चर' शब्द लैटिन भाषा के 'कलतुरा' (Cultora) शब्द से निकला है और 'कल्चर' में वही धातु हैं जो 'एग्रीकलचर' में हैं। अतः इसका अर्थ पैदा करना या सुधारना है।[13] किन्तु इसका एक लाक्षणिक अर्थ यह भी है कि मस्तिष्क तथा उसकी शक्तियों को विकसित करना अथवा शिक्षा द्वारा मानसिक वृत्तियों को सुधारना।[14] आज 'संस्कृति' शब्द अंग्रेजी के 'कल्चर' का पर्याय है। 'कल्चर' शब्द 'कल्टीवेशन' का समानार्थक अर्थ कृषि–कर्म के साथ (उन्नति)[15] और सर्वधन से भी है।[16] सर मोनियस विलियम्स संस्कृति का अर्थ–तैयार करना, रचना, या कृति, संस्कार द्वारा पवित्र करना, संकल्प तथा प्रयत्न द्वारा कार्य की सफलता मानते हैं।[17] ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में 'कल्चर' का अर्थ विचार रूचि और आचार का शिक्षण तथा परिष्कार से है।[18] श्री ताराचन्द पाण्डेय संस्कृति को ध्यान में रखते हुए लिखते हैं– 'संस्कृति' शब्द का उद्‌गम 'संस्कार' शब्द से है। संस्कार का अर्थ वह क्रिया है, जिससे वस्तु के मत (दोष) दूर होकर वह शुद्ध–सिद्धि साधक बनती हैं।[19] अतः संस्कृति का अर्थ वह शिक्षा–दीक्षा है जिससे मनुष्य का जीवन सुधरे।

जहाँ तक संस्कृति को परिभाषित करने की बात है, हम निःसंकोच यह स्वीकार करते हैं कि आज तक इस बात पर विद्वानों में मत मतैक्य? नहीं स्थापित हो सका है जितने तरह के संगठन हैं, जितने तरह के लोग हैं, सबने उतनी ही तरह से संस्कृति के कतिपय पहलुओं को ही परिभाषित कर सके हैं। डा0 भागीरथ मिश्र संस्कृति

को कहते हैं कि " जीवन और काव्य दोनों में ही आनन्द एवं अनवरत नव्यता–सम्पादन के प्रयोग द्वारा ही संस्कृति का निर्माण ओर विकास होता है। संस्कृति और कुछ नहीं जीवन सौन्दर्य के निर्माण और विकास की प्रक्रिया है।"[20] इस सम्बन्ध में डा0 राधाकृष्ण का विचार भी मानने योग्य है–" संस्कृति, विवेक बुद्धि को जीवन को भली प्रकार से जान लेने का नाम है।"[21] डा0 द्वारका प्रसाद सक्सैना के अनुसार–" किसी देश की संस्कृति से उस देश के रहन–सहन, आचार–विचार, ज्ञान–विज्ञान, परम्परागत अनुभव, जीवनयापन के ढ़ंग, कला प्रेम एवं रूचि आदि का बोध होता है।"[22]कविवर दिनकर के अनुसार– "संस्कृति विचार है, संस्कृति भावना है, संस्कृति मनुष्य के जीवन का भी दृष्टिकोण है।"[23] अन्यत्र वे संस्कृति के जीवन का तरीका मानते हैं। उन्हीं के शब्दों में– " यह तरीका जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं।"[24] एक अन्यत्र स्थान पर द्विवेदी जी संस्कृति को मानव की विविध साधनों की परिणति में निहित मानते हैं। "[25] दादा धर्माधिकारी के शब्दों में –" दूसरों के जीवन में शामिल होना और दूसरों को अपने जीवन में शामिल करना ही संस्कृति है।"[26] डा0 मंगलदेव शास्त्री का कथन है– " सामाजिक सम्बन्धों में मानवता को प्ररेणा प्रदान करने वाले उन–उन आर्दशों की समष्टि को ही संस्कृति समझना चाहिए।"[27] श्री राजगोपालचारी का कथन है–" किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के शिष्ट पुरूषों में विचार, वाणी एवं क्रिया का जो रूप व्याप्त रहता है, उसी का नाम संस्कृति है।"[28] डा0 गायत्री वर्मा ने ' संस्कृति'की परिभाषा की विवेचना करते हुए लिखा है–"निरन्तर प्रगतिशील मानव जीवन प्रकृति और मानव सेवा के जिन–जिन असंख्य प्रभावों व संस्कारों में संस्कृत व प्रभावित होता रहता है उन सबके सामूहिक पदार्थ को ही संस्कृति कहा जाता है।"[29] मानव का प्रत्येक विचार, प्रत्येक कृति संस्कृति नहीं है, पर जिन कामों से किसी देश विशेष के समस्त समाज पर कोई अमिट छाप पड़े वही स्थायी प्रभाव संस्कृति है।"[30] डा0 मायारानी टंडन का विचार है कि " मानव के रहन–सहन और आचार–विचार से सम्बन्धित उन सभी परम्परागत बातों से संस्कृति का सम्बन्ध बताया गया है जो उसकी विधि विषयक रूचियों के परिष्कार और विधि अर्थात् शारीरिक , मानसिक और आत्मिक शक्तियों के विकास में सहायक होती है।" श्री मैथ्यू आर्नल्ड के अनुसार संस्कृति का माध्यम उन बातों का ज्ञान है जिनका हमारे साथ आर्थिक सम्बन्ध है अर्थात् "पूर्णता की ओर अग्रसर होने वाला मार्ग ही संस्कृति है।"[31]

डा0 गुलाबराय संस्कृति को जातिगत संस्कारों में निहित मानते हैं।[32] डा0 श्यामसुन्दर दास संस्कृति को रहन–सहन को रूढ़ि मानते हैं।"[33] डा0 सरनाम सिंह के अनुसार–"सामाजिक चेतना की समग्रता का सर्वोत्तम निर्वाह ही जिसमें वैयक्तिकता विचार मुक्त होकर साधनाओं का श्रेष्ठतम आँकलन करती है संस्कृति।"[34] डा0 बलदेव प्रसाद मिश्र के अनुसार– " संस्कृति मानव जीवन के आचार–विचार का परिमार्जन अथवा संशुद्धिकरण है। यह मानव जीवन की परिमार्जित गति, रूचि और प्रवृत्ति पुंज का नाम है।"[35] समाज विज्ञान के विश्वकोष में श्री मैलिनोव्सकी ने 'कल्चर' की परिभाषा करते हुए लिखा है कि इसमें पैतृक निपुणताएँ, श्रेष्ठताएँ, कलागत प्रक्रिया, विचार, आदतें और विशेषताएँ सम्मिलित रहती हैं। अतः संस्कृति का सम्बन्ध दर्शन और धर्म से लेकर सामाजिक संस्थाओं द्वारा रीति–रिवाजों तक मानव जीवन की समस्त महत्व विचार प्रणालियों से है।"[36] श्री करपात्री जी ने भी 'संस्कृति' की ऐसी ही व्याख्या करते हुए लिखा है कि–"लौकिक–पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक , आर्थिक, राजनैतिक, अभ्युदय के उपयुक्त देहेन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार आदि की भूषणभूत सम्यक चेष्टाएँ एवं हलचलें ही संस्कृति हैं।"[37] जिन प्रयासों का जीवन पद्धतियों द्वारा मानव अपने जीवन में बहुमुखी विकास करते हुए सुख शान्ति की उपलब्धि कर सकता है उसी को उसकी संस्कृति कहा जा सकता है। डा0 वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि–" संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वागपूर्ण प्रकार है। जीवन का ढ़ंग हमारी संस्कृति है। संस्कृति हवा में नहीं रहती उसका मूर्तिमान रूप है। जीवन नाना विधि रूपों का समुदाय ही संस्कृति है।"[38]डा0 वी0वी0 काणे का मत है– " हमारी प्रवृत्तियां, विश्वास और विचार, हमारे निर्णय और मूल्य, हमारी संस्थाएँ– राजनीतिक, वैधानिक, धार्मिक और आर्थिक, हमारी नैतिक संहितायें और शिष्टाचार के नियम, हमारी पुस्तकें और यंत्र, हमारे विज्ञान दर्शन एवं दार्शनिक विचार ये सब और दूसरी बहुत सी चीजें संस्कृति में सम्मिलित हैं।"[39] राहुल सांस्त्याकृत्यायन संस्कृति के सम्बन्ध में लिखते हैं कि –" एक पीढ़ी आती है, अपने आचार, विचार, अरूचि, कला, संगीत, भोजन–भाजन या किसी और दूसरी आध्यात्मिक धारणा के बारे में कुछ स्नेह की मात्रा अगली पीढ़ी के लिए छोड़ जाती है। एक पीढ़ी के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरा और आगे बहुत सी पीढ़ियां आती जाती रहती हैं और सभी अपना प्रभाव या संस्कार अपनी अगली पीढ़ी पर छोड़ती जाती हैं यही प्रभाव (संस्कार) संस्कृति है।"[40] डा0 सत्यकेतु विद्यालंकार का कथन है कि– " मनुष्य

अपनी बुद्धि का प्रयोग कर विचार और कर्म के क्षेत्र में जो चिन्तन किया, साहित्य, संगीत और कला का जो सृजन किया। सामूहिक जीवन को हितकर और सुखी बनाने के लिए जिन प्रथाओं और संस्थाओं को विकसित किया उनका सबका समावेश हम संस्कृति में करते हैं।"[41]

डा0 रामजी उपध्याय का मत है कि " मानव ने जो प्रगति की है उसके मूल में बुद्धि और सौन्दर्य की अभिरूचि है। इनका अवलम्बन लेकर वह संस्कार की यथेष्ट रूपरेखा बनाता जा रहा है। वह सम्भवतः किसी रचना को पूर्ण मानकर संतोष नहीं कर लेता, बल्कि नित्य ही कला की वस्तुओं को सुन्दर बनाने सुधारने या पूर्ण बनाने का प्रयत्न मनुष्य की बुद्धि और सौन्दर्य भावना के विकास का परिचय देता है मानव का यही विकास संस्कृति है।"[42] चार सोपानों के रूप में समस्त भारतीय संस्कृति का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करते हुए आधुनिक युग के राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है —" संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिससे हम जन्म लेते हैं। इसीलिए जिस समाज में हम पैदा हुए अथवा जिस समाज में मिलकर हम जी रहे हैं, उसकी संस्कृति हमारी है, यद्यपि अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते हैं वह भी हमारी संस्कृति का अंग बन जाता है और मरने के बाद भी हम अन्य वस्तुओं के साथ अपनी संस्कृति भी विरासत भी अपनी संतानों के लिए छोड़ जाते हैं इसीलिए संस्कृति वह चीज मानी जाती है जो हमारे जीवन को व्यापे हुए है तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है। यही नहीं बल्कि संस्कृति हमारा पीछा जन्म जन्मान्तर करती है।[43]कल्चर मे जो धातु है वही 'एग्रीकल्चर' में भी है जिसका अर्थ सुधारना या उत्पन्न करना है। इस दृष्टि से वे सभी मानवीय कृत्यों जिन्हें मानव ने सुधारकर नवीन रूप दिया है अथवा संस्कार करके उत्पन्न किया है, संस्कृति के अन्तर्गत मानी जायेगी। मानव की यह सुधार करने या उत्पन्न करने की क्षमता ही उसे अन्य प्राणियों से अलग करती है। अपनी इस विशेषता के कारण ही वह समस्त प्राणी जगत में अलग माना जाता है। मानवेत्तर जीवधारी पशुओं और पक्षियों का समूचा बांध प्रवृत्तिमूलक होता है उनकी रचना क्षमता भी प्रवृत्तिमूलक होने के कारण रूढ़ और आवृत्तिमयी होती है। यही कारण है कि वे अपनी मूलभूत रचना क्षमता में विकास नहीं कर पाते। संसार में पशु—पक्षी आज भी कार्य कारण श्रृंखला में उसी प्रकार निबद्ध है,जैसे सृष्टि के आदि में थे जबकि मानव इस कार्य

कारण श्रृंखला से मुक्त हो चुका है। इसका कारण यह है कि जहाँ अन्य प्राणियों के संस्कार क्षण विशेष में अर्थ क्रियात्मक और अस्थिर होते हैं, वहाँ मानवीय संस्कार व्यवस्थित एवं स्थायी होते हैं।"[44]वस्तुतः संस्कृति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, जिसका मुख्य उद्देश्य, सुधार, परिष्कर तथा सर्वागीण रूप से मानवीय संवेदनाओं को अनुप्राणित करना है। सार मुख्य रूप से यही निकलता है कि सत्यम् शिवम् सुन्दरम् से युक्त क्रियात्मक ही संस्कृति है। भारतीय विचारकों के अतिरिक्त कुछ पाश्चात्य् विचारकों ने भी संस्कृति पर चिन्तन किया है जो इस प्रकार परिभाषित है :—मैकाइवर एवं पेज के अनुसार— " संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार में, कला में, सहित्य में, मनोरंजन तथा आनन्द में पाये जाने वाले रहन—सहन तथा विचार के तरीकों में हमारी प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति है।"[45]मैथ्यू आर्नल्ड— " संसार में सर्वोत्तम बातों से परिचित होने को संस्कृति कहते हैं।"टी0एस0 इलियट ने " संस्कृति को व्यक्तिगत, वर्गगत तथा समाजगत रूप समें समझाने का प्रयास किया है।"[46]संस्कृति मानव के सम्पूर्ण व्यवहार का ढ़ाँचा है जो अंशतः भौतिक पर्यावरण से प्रभावित हो सकता है परन्तु मुख्य रूप से यह ढ़ाँचा सुनिश्चित विचारों, प्रवृत्तियों, मूल्यों तथा आदतों द्वारा प्रभावित होता है जिसका विकास समूह द्वारा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता है।[47] एडवर्ड वी0 टायलर के अनुसार—" संस्कृति, ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, न्याय, रीति—रिवाज, तथा अन्य प्रवृत्तियाँ जो मनुष्य समाज का सदस्य होन के नाते अर्जित करता है, इन सवका एक सम्मिश्रण है।[48]हम कह सकते है कि संस्कृति व्यक्तिगत न होकर सामूहिक है, जिसका विकास संस्कारों से होता है।

संस्कृति विषयक चित्तन में भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों में पर्याप्त मौलिक भेद है। भारतीयों के अनुसार संस्कृति से संश्लिष्ट है। सृष्टि के अनन्तर ही संस्कारों का शनैः—शनैः विकास हुआ है। इसके परिणामतः मानव आज सुसंस्कृत है। इसके विपरीत पाश्चात्य विद्वान संस्कृति का उदगम मानव जन्म के साथ ही स्थापित करते है। यदि उनकी इस बात को मान लिया जाए तो ऐतिहासिक साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित मनुष्यों का जंगलों में पशुओं के साथ जीवन—यापन असत्य प्रमणित हो जायेगा। आज भी अनेक व्यक्ति संस्कारो के अभाव में पशु तुल्य ही है। अतः भारतीय विद्वानों का मत ही पाश्चात्यों की अपेक्षा अधिक युक्ति संगत है। मानव के आध्यत्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक, दार्शनिक, एवं कलात्मक आदि सभी प्रकार के विकासों का मूल

आधार संस्कृति है। इन विविध क्षोत्रीय विकासों द्वारा ही किसी देश की सभ्यता का ज्ञान होता है। अतः सभ्यता को मानव के विकास की चेष्टाओं का व्राहय रूप कहा जा सकता है और संस्कृति उसका आस्तरिक रूप होती है। अतः किसी देश के रहन–सहन, आचार–विचार, रीति–रिवाज, ज्ञान–विज्ञान के ढ़ग, रूचि एवं परम्परागत मान्यताओं को ही वहाँ की संस्कृति कहा जा सकता है। कोई भी सहित्यकार जिस सामज में सहित्य सृष्टि के लिए सामग्री ग्रहण करता है उस समाज की बहुमुखी प्रगति एवं उसके रीति–रिवाजों, परम्पराओं एवं मान्यताओं से अवश्य प्रभावित होता है। अतः उसके साहित्य में सहज स्वाभविक रूप से ही उस समाज की संस्कृति रूपयित हो उठती है। संस्कृति क्षेत्र में मूल रूप से विराजमान है। कोई भी क्षेत्र बिना संस्कृति के अग्रसर नहीं हो सकता फिर चाहे मनुष्य हो, वृक्ष हो, पेड़–पौधे हो, पशु–पक्षी हो सभी अपनी–अपनी संस्कृति से जुड़े रहते है। जिस प्रकार हमारी संस्कृति में हमारे भोजन का ढ़ग, रहने का तरीका, बोलनें का ढ़ग, व्यवहार करने का आपसी मेल–जोल सभी निहित रहते है। उसी प्रकार से पशु पक्षियों की भी अपनी संस्कृति है। वे भी अपनी संस्कृति के अनुसार बोलते है, रहते है, चलते है, और खान–पान करते है, एक साथ समूह बनाकर उडते है यह सब उनकी संस्कृति के अर्न्तगत ही आता है। वास्तविकता यह है कि संस्कृति से कोई भी अछुता नहीं रह सकता।

संस्कृति हमारे अन्दर आदर भाव को भी निहित करती है यदि हमारे घर किसी अतिथि का आगमंन होता है तो हम बडे सम्मान से उसका स्वागत करते है फिर सम्मान पूर्वक भाव से ही उनका खान–पान सम्बन्धी आदर सत्कार करते है यह भी हमारी संस्कृति की मुख्य विशेषता है। संस्कृति एक सामजिक विरासत के रूप में ही होती है जो कि समाज द्वारा ही व्यक्ति को उपहार स्वरूप प्रदान की जाती है। जीवन की सभ्यता का नाम ही संस्कृति है। संस्कृति मानव जीवन को उत्थान की और ले जाने वाली वह व्यापक अवधारणा है जो विविध कलाओं के माध्यम से युग–युग की धरोहर वन जाती है।

संस्कृति सार्वभौम सत्य है और उसका स्वरूप एक ही होता है किन्तु भौगोलिक स्थिति और सामाजिक परम्पराओं का उसके स्वरूप निर्माण एवं विकास में प्रमुख योगदान होता है। प्रत्येक व्यक्ति सामाज में रहता है और वह जिस समाज में रहता उसकी संस्कृति से अछुता नहीं रह सकता है, इसलिए समाज और संस्कृति आपस

में सापेक्षा है। यह तो आसानी से स्वीकृत किया जा सकता है कि संस्कृति का मात्र किसी व्यक्ति विशेष से सम्बन्ध न रहे, किन्तु यह पूर्ण रूप से असम्भव है कि वह किसी जाति या समाज से अलग हो जाए। संस्कृति सामूहिक प्रयासों का ही प्रतिफल है। प्रत्येक समाज की अपनी अलग–अलग संस्कृति होती है। जैसे कि उदाहरण के रूप में हिन्दू संस्कृति में बच्चें के जन्म के पूर्व और पश्चात, अनेक संस्कारों से गुजरना पड़ता है। जो अन्य धर्मो, सम्प्रदायों की रीति–रिवाजों से अलग हो सकते हैं।

प्रायः देखा जाए तो दो देशों की संस्कृति में विभिन्नता रहती है, किन्तु विभिन्नता होते हुए भी कुछ उदाहरण ऐसे मिलते है जो शाश्वत और व्यापक होते है। आदि मानव ने अपनी अनभिज्ञावस्था में वुद्धि और चिन्तन के प्रतिफल स्वरूप प्राकृतिक शक्तियों पर विजय प्राप्त की जिस विजय प्राप्ति के पीछे एक नियामक शक्ति थी, जो आज भी उपस्थित है तथा आदिमानव में भी विद्यमान है। प्रारम्भ में सांस्कृतिक उपादानों का स्वरूप स्थूल या अनगढ़ रहा होगा, परन्तु कालान्तर में उनका विकास होता गया।

संस्कृति और समाज एक दुसरे से धनिष्ठ रूप मे संश्लिष्ट है। सांस्कृतिक विकास सामूहिक प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हुआ करते है। यही कारण है कि संस्कृति का विकास मन्द गति से होता है। संस्कृति परम्परागत आचार– विचार और भौगोलिक परिवेश से प्रभावित हुए विना नहीं रह सकती है। यद्यपि परम्परागत उदात्त विचार धाराओं का युगानुकूल संस्कार होता रहता है तथपि संस्कृति नूतन नहीं है क्योकि संसकृति का अस्तित्व नूतन और पुरातन अनुभुतियों के संस्कारों द्वारा निर्भित समुदायों के दृष्टिकोण में निहित है। संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार में, कला में, साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन और आनन्द में पायें जाने वाले रहन–सहन और विचारों की अर्न्तनिहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है।[49] संस्कृति के विकास में आदन–प्रदान का भाव निहित होता है क्योंकि मानव मात्र के वैयक्तिक व्यवहार संस्कृति का अंग कभी नहीं बन पाते। जब उन्है दुसरों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है तो वे संस्कृति में समाविष्ट हो जाते हैं। संस्कृति व्यवहारों का, इस प्रकार, समूहमात्र नहीं है, अपितु व्यवहारों का अन्योन्यश्रित होकर एक सुद्रढ़ व्यवस्था में डल जाना है। पारस्पिरक सम्पर्क संस्कृति के विकास में प्रमुख उपादान है। डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी' के शब्दों में– '' हमें किसी सिद्धान्त का त्याग इसलिए नहीं करना चाहिए कि वह अभारतीय है। हमें विदेशी सिद्धान्त भी गुणों की कसौटी पर ग्रहण करने चाहिए।[50]

संस्कृति का क्षेत्रः–

संस्कृति शब्द से मानस पटल पर एक सुनियोजित क्षेत्रमयी और प्रेय छवि व्यापक क्षेत्र को आत्मसात करते हुए खिंच जाती है। संस्कृति के क्षेत्र के सम्बन्ध में विचार करते हुए डॉ0 ज्ञानप्रकाश की संस्कृतिगत परिभाषा पर द्वष्टि पात करना आवश्यक हो जाता है। उन्होने लिखा है कि '' संस्कृति मानव–जीवन की भूत, वर्तमान, और भविष्य की वह निधि है जिससे उसके और उसके पूर्वजों के राजनीतिक आर्थिक, सामाजिक, धर्मिक, वैज्ञानिक एवं कला सौन्दर्य बोध अर्थत् समस्त जीवन मूल्य प्रतिध्वनित होते है।[51]इस प्रकार संस्कृति का सम्बन्ध मनुष्य के सामजिक राजनीतिक धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक एवं कलागत जीवन के विविध पहुलओं से है। जहाँ तक मानव जाति का विस्तार फैला हुआ है वहाँ तक संस्कृति का क्षेत्र फैला हुआ है क्योकि मानव से अलग रहकर मानव सस्कृति की कल्पना ही नहीं की जा सकती व्यक्ति जो कुछ भी सीखता है अपनी संस्कृति में ही रहकर सीखता है। यदि हम सही ढंग से बोलते है, रहते है, चलते हैं तो यह सब हमारी संस्कृति की देन है। किन्तु यदि कोई प्रारम्भिक अवस्था में ही पशुओं के बीच रहता है तो वह उन्हीं की संस्कृति को अपना लेता है, उन्ही की तरह चलने लगता है, उन्ही की तरह आचरण करने लगता है। वह श्रेष्ट मानवीय गुणों से अछुता रह जाता है क्योंकि वह अपनी संस्कृति से अलग हो जाता है। संस्कृति का क्षेत्र मानव जीवन के समस्त पहलुओं को अपने अन्दर समेटकर चलता है। मानव जीवन का कोई भी अंग संस्कृति से पृथक नहीं कहा जा सकता है। इस प्रकार जहाँ मानव का सम्बन्ध होता है वहीं संस्कृति का विस्तार होता जाता है और मानव के व्यक्तिगत जीवन से लेकर पारिवारिक, सामाजिक, और राष्ट्रीय क्रिया कलाप संस्कृति के क्षेत्र में आ जाते हैं। किसी भी देश की संस्कृति में वहाँ का सामाजिक, ऐतिहासिक, दार्शनिक एवं राजनीतिक विकास भी इसी के अर्न्तगत लिया जाता है, मानव जीवन के अर्न्तगत आने वाली समस्त व्यवस्था एवं सभ्यता संस्कृति के अर्न्तगत आती है।

अमेरिका के प्रसिद्ध मानव जाति–शास्त्रज्ञ श्री फ्राँज बोस ने संस्कृति के तीन पहुलओं का उल्लेख किया है– (1) मानव तथा प्रकृति के बीच विविध सम्बन्ध (2) मानव तथा मानव के बीच रागात्मक सम्बन्ध, (3) मानव तथा प्रकृति तथा प्रकृति के बीच सम्बन्धों तथा मनुष्यों के पारस्पिरक रागात्मक सम्बन्धों की मानव के मन पर विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया तथा उसके बौद्धिक और भावात्मक स्वरूप श्री फ्रांज बोस ने इनके

उदाहरण देने हुए प्रथम वर्ग के अर्न्तगत अन्न के अर्जन तथा रक्षण, आश्रय स्थानों के निर्माण विश्व या प्रकृति की विविध वस्तुओं में परिवर्तन करके उनके अस्त्र–शस्त्रों औजारों तथा वर्तनों के रूप में उपयोग, पशुओं, वनस्पतियों, निरिन्द्रिय पदार्थ, ऋतुचक्र, वातावरण आदि के उचित उपयोग तथा नियमन अथवा इनकी सहायता से जीवन को नियत्रंण एवं सुखी बनाने के विविध भागों की खोज आदि को समाविष्ट किया है, दूसरे वर्ग में परिवारों, गुणों, जातियों तथा विभिन्न सामजिक दलों के बन्धनों को सामजिक स्तरों, तथा उनके प्रभाव सें उत्पन्न होने वाली ऊँच–नीच की परम्परा थी अवस्था से उत्पन्न यौन सम्बन्धों को राजनेतिक एवं धार्मिक संगठनों को तथा शाक्ति और संधर्षो के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले सामाजिक सम्बन्धों को सम्मिलित किया है, और तीसरे वर्ग में नीति तथा धर्म से सम्बन्ध एवं सौन्दर्य विषयक मूल्यों को अन्नर्भूत किया है।[52]

मानव ने समाज के विकास के लिए जिस विषय को उपयोगी समझा उससे स्वंय बाँध लिया। उसने मनोरंजक आत्मभिव्यक्ति के लिए साहित्य और कला को जन्म दिया तथा आत्म सन्तुष्टि के लिए धर्म का विकास किया। ये सभी संस्कृति के अंग संस्कार जन्य हैं, जिन्हें संस्कृति के क्षेत्र के अन्दर समाविष्ट किया जा सकता है। संस्कृति के स्थाईत्व पर डॉ0 सरनाम सिंह का कथन है–'' सभ्यताओं का विकास और हो सकता है पर संस्कृति का मौलिक रूप चिरत्तन और चिरस्थायी है।''[53] '' संस्कृति का अर्थ मनुष्य का भीतरी विकास और उसकी भौतिक उन्नति है जो उसकी वौद्धिक विकास की अवस्थाओं को सूचित करती है।''[54] वस्तुतः संस्कृति का क्षेत्र व्यापक है। मानव ने सामाजिक जीवन के सम्यक निवर्हन के लिए संस्कृति को विभिन्न दृष्टियों से विकसित किया है। उसने विवाह करके यौन सम्बन्धों के माध्यम से परिवार और समाज की स्थापना की उसने सामजिक सम्बन्धों को द्वढ़ता प्रदान करने के लिए अनेक नियमों का प्रतिपादन किया। सामाजिक सम्बन्धों को व्यापकता प्रदान करने के लिए उसने निकटवर्ती सम्बन्धों में विवाह करना अनुचित समझा। फलतः परिवार का विस्तार कुल, जाति शब्द और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुँच गया। संस्कृति के इन विविध पहलुओं के विकास में देश की सभ्यता प्रतिविम्बित होती है।

संस्कृति और सभ्यताः–

संस्कृति के भौतिक स्वरूप को 'सभ्यता कहते हैं और सभ्यता के अभौतिक

पक्ष को 'संस्कृति'। उदाहरण के लिए मानव ने साधारण वेडौल पत्थर या संगमरमर को छाँट–छाँट कर सुन्दर मूर्ति का निर्माण किया। यह सभ्यता का अंग है और यही संस्कृति का भौतिक स्वरूप है परन्तु पत्थर की इस मूर्ति में मनुष्य की कला और सौन्दर्य की श्रेष्ठ भावनाएँ तथा हस्तकौशल अभिष्यवत हुआ है यह सभ्यता का अभौतिक अंग है जिसे संस्कृति कहते हैं।[55] सभ्यता शब्द 'सभ्य' शब्द से बना है जिसका अर्थ है 'सदस्य' या 'सभासद' सभ्यता किसी सभा–समाज की होती है, अतः सभ्यता एक सामजिक गुण है। जिसका अनुमान हम किसी व्यक्ति विशेष की वेशभूषा, बोलने का तरीका, उसके आचरण और व्यवहार से लगाते है। वास्तव में प्रकृति द्वारा प्रदत्त पदार्थो, तत्वों और शक्तियों का उपयोग कर मनुष्य ने भौतिक क्षेत्र में जो असाधारण उन्नति की है उसी को हम सभ्यता कहते है। सभ्यता के माध्यम से मानव अपनी मौलिक आवश्यकताओं को निर्वाध पूर्ति, स्वतन्त्रता और सुरक्षा की प्राप्ति करता है। भगवतशरण उपाध्याय ने वेमेल जीवन से मानव का विकास मिले जुले जीवन की प्रवृत्ति एवं सभा बनाना तथा उसमें बैठने का ढ़ग पैदा करना ही सभ्यता बतलाया है।[56] बहुधा लेखक 'संस्कृति' और 'सभ्यता' में कोई विशेष अन्तर नहीं समझते हैं और दोनों शब्दों का पर्यायवाचक शब्दो के रूप में प्रयोग करते है। परन्तु यह सम्पुर्ण धारणा भ्रमपुर्ण है। संस्कृति आभ्यन्तर और मानसिक है जबकि सभ्यता वाह्य और भौतिक तत्व है। संस्कृति आत्मिक अभ्युत्थान की द्योतिका है, परन्तु सभ्यता शारीरिक–मनोविकार की प्रदर्शिका है, संस्कृति को अपनाने में समय लगता है, परन्तु सभ्यता की तुरन्त ही नकल की जा सकती है। सभ्यता संस्कारों का रूप धारण कर लेती है तो वह संस्कृति का अंश बन जाती है।

सभ्यता का सम्बन्ध बाहरी वैभव, रहन–सहन, वेश–भूषा, आचार–व्यवहार आदि से है, परन्तु संस्कृति का सम्बन्ध आन्तरिक और मानसिक विकास से, नैतिकता से त्याग, दया, परोपकार आदि उच्च एवं कोमल भावनाओं से सुशिक्षा से परिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय संस्कृति विस्तार है तो सभ्यता कठोर स्थिरता हर संस्कृति की अपनी सभ्यता होती है।[57] सभ्यता संस्कृति की अनिवार्य परिणति है। सभ्यता से किसी संस्कृति की बाहरी चरम कृतिम अवस्था का बोध होता है। संस्कृति अनभवजन्य ज्ञान पर और सभ्यता बुद्धिजन्य ज्ञान पर निर्भर है। अनुभवजन्य ज्ञान नित्य और बुद्धिजन्य ज्ञान परिवर्तन शील होने के कारण नित्य और सभ्यता परिवर्तन शील होती है। संस्कृति मनुष्य के अखिल जीवन को संस्कारित करती है और सभ्यता कला सापेक्ष होने के कारण

ब्राहय जीवन को अल्प समय के लिए प्रभावित करती है। संस्कृति और सभ्यता बडे दोनों ही एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, फिर भी इनमें पर्याप्त अन्तर हैं। दिनकर जी संस्कृति और सभ्यता के अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहते है– '' सभ्यता वो चीज है जो हमारे पास है संस्कृति वह तत्व है जो हम स्वय है। '' सभ्यता '' बहुत जल्दी ही बन सकती है किन्तु ''संस्कृति'' बनने में बहुत समय लगता है। सभ्यता शीघ्र नष्ट हो जाती हैं, किन्तु संस्कृति के नष्ट होने में काफी समय लगता है।''[56] दिनकर जी के अनुसार '' मोटर, महल, गाडी,ये सभ्यता के उकरण हैं जो शीघ्र नष्ट किये जा सकते हैं, किन्तु दया, माया, करूणा, अहिंसा, साहस, और शील ये आसानी से नष्ट नहीं होते। कहा तो यह भी जाता है कि संस्कार मनुष्य की मृत्यु से भी समाप्त नहीं होता है। वह जन्म जन्म–जन्मान्तर तक हमारा पीछा करता है।''[59]

सभ्यता और संस्कृति के पारस्पिरक सम्बन्ध को समझाने का प्रयत्न करते हुए श्री रामनाथ सुमन लिखते है–'' मानव मन की ब्राह्य प्रवृत्ति मूलक प्रेरणा से कुछ विकास हुआ है, उसे सभ्यता कहेंगे और उसकी अर्न्तमुखी प्रवृत्तियों से जो कुछ बना है, उसे संस्कृति कहेंगे। शरीर और आत्मा की भाँति सभ्यता एवं संस्कृति जीवन की दो भिन्न प्रेरणाओं को प्रभावित करती है। दीपक की लौ सभ्यता है, उसके अन्दर भरा स्नेह संस्कृति है। सभ्यता जीवन का रूप है, संस्कृति उसका सौन्दर्य है, जो रूप से भिन्न भी है, अभिन्न भी है– जो उसके पीछे से झाँकता है और जीवन के अवगुष्ठन से भी बाहर फूट पडता है। पर वस्तुतः अन्तर में समाया हुआ है।[60] डॉ0 मदन गोपाल के अनुसार –'' संस्कृति जीवन का आन्तरिक सौन्दर्य है, जबकि सभ्यता उसके ब्राह्य साधनों की भूमिका है। अतएवः संस्कृति वह शक्ति है जिसे मनुष्य अपने सुविधा संस्कार और वातावरण से पाता है परन्तु सभ्यता मनुष्य को प्रगति पथ की और ले जाने का संकेत करती हुई उसके मनोविकारों की द्योतक है।''[61]

सभ्यता के विषय में डॉ0 देवराज के विचार भी बड़े स्पष्ट हैं– उनके अनुसार 'सभ्यता' से तात्पर्य उन अविष्कारों उत्पादन के साधनों एवंम् सामाजिक, राजनीतिक, संस्थाओं से समझना चाहिए, जिनके द्वारा मनुष्य की जीवन यात्रा सरल एवं स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त होता है। इसके विपरीत संस्कृति का अर्थ चिन्तन तथा कलात्मक सृजन की वे क्रियायें समझनी चाहिए, जो मानव व्यक्तित्व और जीवन के लिए साक्षात उपयोगी न होते हुए भी उसे समृद्ध बनाने वाली है। इस दृष्टि से हम विभिन शास्त्रों दर्शन आदि

से होने वाले चिन्तन साहित्य, चित्रांकन आदि में कलाओं एवं परहित साधन आदि नैतिक आदर्शो तथा व्यापारों को संस्कृति की संज्ञा देंगे।[62] संस्कृति तो मानव समाज के मन और मस्तिष्क में रहने वाले सूक्ष्म विचार की समष्टि है, जबकि सभ्यता उसका प्रत्यक्ष सामाजिक रूप हैं। सभ्यता अंश है और संस्कृति अंशी कितुं फिर भी एक दूसरें से इतना अधिक सम्प्रक्त हैं कि एक बिना दूसरे का अस्तित्व ही सेदेह में पड़ जाता है। संस्कृति का निर्माण सभ्यता के परिवेश में होता है। सभ्यता वह वस्तु है जो भौतिक रूप से हमारे पास है, हमारे समीप है और संस्कृति वह गुण है जो हमारे अर्न्तगत व्याप्त है। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति सभ्य होता है। क्योंकि भव्य एवं विशाल भवनों राजसी ठाट–बाट से जीवन–यापन करने वाले व्यक्ति प्रायः अत्यन्त निर्दय और ममता रहित देखें जाते हैं, जबकि टूटी – फूटी झोपड़ी मे मैले कुचेले वस्त्र पहनकर जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति मे भी दूसरों के प्रति दया, सह्दयता एवं सहानुभूति देखी जाती है। इससे सिद्ध है कि सभ्यता यदि शरीर है तो संस्कृति आत्मा है सभ्यता यदि पुष्प है तो संस्कृति सुगंधि है और सभ्यता यदि अनल है तो संस्कृति मानव मूल्यों की उष्णता है। बिना आत्मा के जैसे शरीर निर्जीव होता है, वैसे ही बिना संस्कृति के सभ्यता भी निर्जीव है, बिना सुगंध के जैसे पुष्प लाभकारी नहीं होता है वैसे ही बिना संस्कृति के सभ्यता लाभकारी नहीं होतीः और जैसे बिना उष्णता के अनल व्यर्थ है वैसे ही बिना संस्कृति के सभ्यता भी व्यर्थ है, क्योंकि ऐसी सभ्यता का संसार में कोई मूल्य नहीं है, जिससे मानवों के प्रति प्रेम, करूणा, दया, सहानुभूति, सह्दयता आदि के लिए कोई स्थान नहीं होता परन्तु वही सभ्यता सराहनीय है जिसमें संस्कृति का निवास होता है और जो मानव को विनाश की और न ले जाकर कल्याण की और उन्मुख करती है। संस्कृति का सम्बन्ध उन आन्तरिक गुणों से है जिसके कारण कोई समाज सहानुभूति, सह्दयता, सज्जनता, सुशीलता, विनम्रता आदि का व्यवहार करता है। संस्कृति और सभ्यता को डॉ रामानन्द तिवारी इस प्रकार स्पष्ट करते है। '' जीवन के साधनों और सुविधाओं के विकास को ''सभ्यता'' का नाम देना उचित है। इसके विपरीत जीवन में ऐसे मूल्यों और साध्यों का सम्बर्द्धन, जो प्राकृतिक दृष्टि से उपयोगी नहीं है, ''संस्कृति'' कहा जा सकता है यही सभ्यता और संस्कृति में भेद हैं। सभ्यता का सम्बन्ध प्राकृतिक सुख–सुविधाओं के साधन से है, जो प्राकृतिक आवश्यकताओं की दृष्टि से उपयोगी है किन्तु संस्कृति निरूपयोगी मूल्यों की साधना है।''[63] आर्थिक व्यवस्था, राजनैतिक

संगठन, नैतिक परम्परा और सौन्दर्य–वोध को तीवृतर कसे की योजना, ये संस्कृति के चार स्तम्भ है। इन सब के प्रभाव से संस्कृति बनती है।[64] अतः सभ्यता संस्कृति का एक ही भाग ही है। सभ्यता यदि भौतिक शरीर है तो संस्कृति आत्मा है। संस्कृति का स्वरूप साहित्य में निहित होता है किसी संस्कृति को जानने का प्रमुख स्रोत साहित्य होता है तथा इसकी प्रमाणिकता के लिए पुरातात्विक आदि साक्ष्यों की आवश्यकता होती है।

साहित्य और संस्कृति :–

मानवों के परम्परागत भावों एवं विचारों के संचित भण्डार का नाम साहित्य है। साहित्य में किसी जाति,समाज एवं राष्ट्र के सभी एवं विचार विद्यमान रहते हैं, जो एक सुदीर्घ परम्परा से प्रचलित हैं। इस परम्परा में किसी जाति देश एवं राष्ट्र की रीति–नीति, रहन–सहन, जीवन–यापन, की पद्धति, दार्शनिक चिन्तन, आर्थिक विकास, राजनीतिक मान्यताएँ, धार्मिक विचार आदि विद्यमान रहते हैं और इन सभी का सम्बन्ध संस्कृति से है। अतः संस्कृति ही किसी देश या राष्ट्र की परम्परा का निर्माण करती है। संस्कृति एक ऐसी सुदृढ़ नीव है, जिस पर साहित्य का विशाल भवन तैयार होता है। संस्कृति ही हिम–गिरि की वह सर्वोच्च शिखर है, जहाँ से साहित्य की सुरसरि प्रवाहित होकर निरन्तर सबके हित साधन में लीन रहती है।

संस्कृति केवल साहित्य की प्रेरणा स्रोत ही नहीं होती अपितु संस्कृति साहित्य की जननी भी होती है। जैसे माता के अधिकांश गुण उसकी संतान में सहज ही आ जाते हैं, वैसे ही संस्कृति की अधिकांश विशेषताएँ उसके साहित्य में भी सहज ही आ जाती है। :–उदाहरण स्वरूप भारतीय संस्कृति ने धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष सम्बन्ध जिन चार पुरूषार्थो के महत्व का निरूपण किया है, भारतीय संस्कृति में इन पुरूषार्थ चतुष्टय को अधिकाधिक गरिमा एवं महिमा प्रदान की है। वर्णाश्रम की प्रधानता जो कि भारतीय संस्कृति में निहित है उसके साहित्य में भी दृष्टिगोचर होती है। भारतीय संस्कृति कल्याणकारी भावनाओं से ओत–प्रोत है इसीलिए इसके साहित्य में भी ये गुण विद्यमान हैं। फारसी साहित्य का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि उसमें भौतिक प्रेम का प्रधान्य है और सुरा, साकी एवं इश्क का ही बोलबाला है। इसका मूल कारण है कि फारस प्रदेश में भोग प्रधान संस्कृति का ही प्रभुत्व रहा है। मुस्लिम जनता में प्रायः इहलोक के प्रति अधिक आर्कषण एवं अधिक लगाव है इसीलिए उनकी संस्कृति भी भौतिक–सुख सुविधाओं से भरी हुई है जो कि साहित्य में भी निहित है। इनके साथ ही अंग्रेजी संस्कृति में भौतिकता का प्रधान्य है इसके कारण ही अंग्रेजी साहित्य में भौतिक सुख–समृद्धि का अत्यन्त रोचक निरूपण हुआ है, प्राकृतिक सुषमा का अत्यन्त चित्ताकर्षक

वर्णन हुआ है, भौतिक प्रगति के लिए बड़ी–बड़ी समुन्नत योजनाओं का चित्रण हुआ है। जो उनके साहित्य में पग–पग पर मिलता है। इसके ठीक विपरीत भारतीय संस्कृति त्यागपूर्ण भोग से ओत–प्रोत, क्योंकि यही तो ' तेन व्यकेतन' 'भुंजीथ' का आर्दश रहा है अर्थात् त्याग सहित भोगों को महत्व दिया है। इसी कारण यहाँ भौतिकता के साथ–साथ आध्यात्मिकता का भी महत्व माना गया है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति की यह छाप भारतीय साहित्य पर भी विद्यमान है। अतः जिस देश की संस्कृति होगी। वहाँ साहित्य की प्रेरणा एवं रचना का अक्षय भण्डार है। साहित्य की किसी संस्कृति का जीवनाधार होता है।

यदि किसी संस्कृति का साहित्य नहीं होता, तो वह संस्कृति कुछ काल के उपरान्त पूर्णतया नष्ट हो जाती है, क्योंकि उसका विवरण तो साहित्य में ही सुरक्षित रखता है, साहित्य में ही उसके विचार एवं भाव संचित होते हैं, और साहित्य में ही उसकी चिन्तन एवं मनन की परम्पराएँ विद्यमान रहती है। बेवीलोनिया, असीरिया आदि देशों की संस्कृति के विनाश का मूल कारण ही यह है कि उनके साहित्य का विनाश हो गया था और उनके साहित्य के कैसे भी चिह्न अवशिष्ट नहीं रहे। किसी देश की संस्कृति को जानने का सबसे प्रमुख साधन साहित्य ही होता है। उदाहरण के लिए भारतीय संस्कृति की एक अक्षुण्ण परम्परा वेदों से लेकर आरण्यकों ब्राहमण ग्रन्थों, उपनिषदों, पुराणों, इतिहास ग्रन्थ काव्य आदि में अंकित है। यदि दुर्भाग्यवश उक्त वाड़मय का किसी प्रकार विनाश हो जाता है, तो आज भारतीय साहित्य की इस धारा ने ही आज भारतीय संस्कृति को संजोए रखा है। भारतीय वाड्मय का अनुशीलन करने वाला व्यक्ति आज अनायास ही भारतीय संस्कृति के अविरल स्रोत से परिचित हो जाता है। यह महत्वपूर्ण कार्य साहित्य की स्रोतस्विनी अविरल गति से आज तक प्रभावित हो रही है जो अपनी कल–कल ध्वनि से भारतीय संस्कृति की गरिमा एवं महिमा का स्तवन कर रही है। साहित्य ही किसी संस्कृति का प्रचारक होता है। प्रायः साहित्य में किसी न किसी संस्कृति के ही गूढ़ विचार उस देश के साहित्य में विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार साहित्य में किसी न किसी संस्कृति का अवश्य वर्णन होता है। साहित्य और संस्कृति परस्पर सापेक्ष हैं। संस्कृति मनुष्य के धर्म, वातावरण और संस्कारों से प्रेरित होती है। साहित्य, समाज, धर्म एवं कला से प्रभावित होता है। साहित्य का स्वतंत्र व्यक्तित्व होता

है फिर भी वह अपने देश की भूत और भविष्य की संस्कृति से सम्बन्धित रहता है। मनुष्य किसी विषय पर चिन्तन कर सकता है, उसका रसास्वादन कर सकता है, परन्तु साहित्यकार उसे अपने विचारों से प्रदर्शित करता है। संस्कृति भी साहित्य के साथ परिवर्तित होती है, यह समुचित ही है , क्योंकि साहित्य संस्कृति क वाहन है। मनुष्य के मानसिक विकास के साथ संस्कृति भी अपना विस्तृत रूप धारण कर लेती है तथा साहित्य उसकी अभिव्यक्ति में सहायक होता है। डा0 सरनाम सिंह ने साहित्य को संस्कृति का इतिहास कहकर उसे " प्रतिबिम्ब" तथा अनागत का 'प्रदीप' माना है।[65]

किसी भी देश की संस्कृति को समझने के लिए उस देश के साहित्य को समझना अत्यन्त आवश्यक होता है,क्योंकि किसी देश या जाति की संस्कृति का उचित संरक्षण उस देश या जाति के साहित्य अथवा इतिहास में ही हो सकता है। साहित्य तो बहुत कुछ सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति ही होता है। इस तरह से साहित्य और संस्कृति एक दूसरे से बहुत निकट सम्पर्क रखते हैं और सांस्कृति की समस्त ज्ञान तथा बुद्धि की चेतना तथा सौन्दर्य एवं मूल्यों की चेतना साहित्य में सुरक्षित रह सकती है। किसी देश की संस्कृति को समाप्त करना हो तो फोरन उस देश की संस्कृति को समाप्त करना होगा, इसके लिए इस उस देश का साहित्य पढ़ाया जाना बन्द कर दीजिए, फिर आप पायेंगे कि धीरे–धीरे वह संस्कृति लुप्त होती जायेगी। अतः संस्कृति की रक्षा के लिए सबसे पहले उसके साहित्य की रक्षा की करना नितान्त आवश्यक होता है।[66]

साहित्य, समाज धर्म एवं कला से प्रभावित होता है। वह मानव जाति के उच्च से उच्च और सुन्दर से सुन्दर विचारों तथा भावों का वह गुच्छा है, जिसकी बाहरी सुन्दरता और भीतरी सुगन्धि होती है जो मन को मोह लेते हैं। कोई जाति तब तक बड़ी नहीं हो सकती जब तक उसके भाव और विचार उन्नत न हों। जब भाव और विचार उन्नत होंगे, तब उनका विकास उस जाति के साहित्य के रूप में ही हो सकता है।[67] साहित्य और संस्कृति के इस अटूट बन्धन को देखकर स्पष्ट पता चलता है कि संस्कृति यदि असीम सागर है तो साहित्य वह मेघ है, जो संस्कृति के सागर से ही अपना जल रूपी ग्रहण कर दिग् दिगंत में वर्षा करके अपनी संस्कृति के गहन–विचारों से जन साधारण को अवगत कराता रहता है। इसी प्रकार संस्कृति यदि हिम गिरि की उन्नत एवं उत्तुंग हिमाच्छादित शिखर है, तो साहित्य उस पर्वत शिखर से प्रवाहित होने वाली

कल–कल निनादिनी स्रोतस्विनी है, ऐसे ही संस्कृति यदि बसंत है, ऋतु है, तो साहित्य उस वांसतिक छटा की गरिमा से परिपूर्ण वन–वैभव के समान है, जो अपनी अद्‌भूत, शोभा, मधुर एवं मादक सुगन्धि, अनन्त विकास तथा असीम आहलाद के द्वारा जन–जीवन को आनन्द विभोर रहती है। संस्कृति यदि अनन्त एवं असीम आलोक से परिपूर्ण सूर्य है, तो साहित्य चन्द्र, शुक, मंगल आदि गृह–नक्षत्रों की भाँति दैदीप्यमान होकर जन–जन के ह्‌दय में व्याप्त अज्ञान तिमिर का नाशक है। वास्तव में साहित्य को संस्कृति का ही सबल प्राप्त होता है। तभी वह लोक हित में लीन रहता है तभी वह सह्‌दयों के जनमानस को आह्‌लादित करता है यही कारण है कि संस्कृति के बिना साहित्य पंगु है। अतः साहित्य और संस्कृति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। कोई भी साहित्यकार जिस क्षेत्र में रहता है वहाँ की संस्कृति की उपेक्षा नहीं कर सकता और हर साहित्यकार अपने युग एवं स्थान की संस्कृति से अनिवार्य रूप से प्रभावित होता रहता है, वह जिस देशकाल में रहता है वहाँ का रहन–सहन, वेश–भूषा, उत्सव, मान्यताएँ, परम्पराएँ, विचारधाराएँ अवश्य ही उसके साहित्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से रूपायित होती रहती है। इस प्रकार साहित्य में कठिन ही नहीं सर्वथा असम्भव है, क्योंकि साहित्य में देश की संस्कृति को एकता के सूत्र में पिरोता है।

तुलसी काव्य में संस्कृति :–

गोस्वामी तुलसीदास भारतीय संस्कृति के प्रति परम निष्ठावान एवं उदात्त भावना शील महाकवि थे। इनके काव्य में आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक जीवन की व्यापक एवं उत्कृष्ट मूल्य मीमांसा हुई है। 'स्वान्तः सुखाय रचित तुलसी का 'रामचरित्रमानस' मानव जीवन का ऐसा मर्यादापूर्ण अमर काव्य है, जो इनकी शाश्वत मर्यादाओं का प्रतीक बन गया है। लोकमंगल की भावना ही तुलसी काव्य का प्रेरणा–बिन्दु है। 'सत्य', 'शिव' ,' सुन्दरम्' की व्यापक परिधि में ही उन्होंने अपने काव्य का प्रणयन किया है। काव्य का लक्ष्य भी वे 'सुरसरि सबकहँ हित होई' मानते हैं। यही कारण है कि उनमें लोकमंगल दृष्टिकोण ही प्रधान है और काव्यगत दृष्टिकोण गौण। तुलसी ने भारतीय सांस्कृतिक इतिहास के अन्तर्गत 'रामचरित्रमानस' की रचना करके युग की माँग को समझकर भारतीय संस्कृति की रक्षा की। तुलसी के युग में वैयक्तिक एवं पारिवारिक तथा सामाजिक तथा नैतिक जीवन का अत्याधिक ह्रास हो गया था।

चमत्कार तृष्ण दिड़ मूढ़ जनता मन प्रवाह द्विमुखी था। परम्परा निगणित तथा परम्परा भंजक। परम्परा और परिवर्तन की शक्तियाँ शक्ति परीक्षण कर रही थीं। यह था अंतः संकट। बाहर से छंदम– धर्मावेशी मुस्लिम साम्राज्यवाद चुनौती दे रहा था। हिन्दु राज्य–सत्ता की दीपशिखा क्षीण कांति हो रही थी। स्वाधीनता–कामी शक्तियाँ संघर्षरत थीं जिसकी अभिव्यक्ति दिल्ली की सत्ता के विरूद्ध विद्रोह के रूप में हो रही थी। इस प्रकार जहाँ एक ओर आर्दशों का शून्य उभर रहा था, वहीं दूसरी ओर यह भी संकट था कि आर्दशविहीन जनगण विजिगीषा शून्य होकर सत्ताधीशों का मुखपेक्षी न बन जाऐ। जनता में स्वाधीनता की अग्नि सुलगाने के साथ ही सत्ता निरपेक्षता जगाना एक दुष्कर कार्य था। सत्ता–पूजकता की वृत्ति के बलवती होने पर अवश्यंभावी था। **'संतन को कहाँ सीकरों सों काम'**[68] के द्वारा सत्ता–पूजा की भावना पर प्रचंड प्रहार किया जा रहा था और आर्दशों के शून्य को भरने के लिए तद्युगीन कवि चेतना ने मर्यादापुरूषोत्तम राम के चरित्र को लोक–लोचन के सम्मुख प्रस्तुत किया। तुलसी ने रामराज्य का विधेयात्मक आर्दश सनातन भारत के राजनैतिक संकल्प अथवा राष्ट्रीय उपलब्धि के रूप में जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया।

तुलसी की मान्यता थी कि समष्टि की इकाई व्यष्टि जब तक धर्मनिष्ठ और नैतिक नहीं बनता, अपनी संकीर्ण, स्वार्थी, मनोवृत्तियों को त्यागकर, प्रेम, शान्ति सौहार्द और एकता की प्रतिष्ठा नहीं करता, तब तक मनुष्य का अंतजीवन, बाह्य जीवन, समाष्टि जीवन तथा समाज की सुखमयता एंव समृद्धिशीलता संभव नहीं है। अतः तुलसीदास ने अपनी कृति रामचरित्रमानस में 'कलि वर्णन' के माध्यम से उस समय की विषमता को उजागर किया है तथा भारतीय समाज को पुरातन हिन्दु संस्कृति से अभिषिक्त किया है।

तुलसीदास ने अनुभव किया जिस समाज के बड़ों का आदर, विद्वानों का सम्मान, तथा वीरों के प्रति श्रृद्धा भाव का लोप हो जायेगा तथा परम्पराओं तथा सामाजिक मान्यताओं की अवहेलना एवं उत्तम कर्मपूर्ण संस्कारों का अभाव होगा वह समाज कहीं भी सुख शान्तिपूर्ण नहीं रह सकता है। ए0जे0 टाम्बी ने भी लिखा है " जिस समाज में नैतिक तथा धार्मिक बन्धनों का अभाव होता है, वह समाज अतिशीघ्र नष्ट हो जाता है।"[69]इसीलिए तुलसीदास ने 'रामचरित्रमानस' में सामाजिक व्यवस्था का एक विशाल आर्दश पटल खींचा है, जिसमें वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक नैतिक

मर्यादा का पूर्ण रूप समाविष्ट हो जाता है। श्री राम मर्यादा पुरूषोत्तम हैं। वे युवक होते ही समाज मंगल के निमित्त नैतिकता एवं मर्यादाएँ कायम रखने के लिए त्याग तथा संघर्ष का जीवन आरम्भ करते हैं। राम गृहस्थ एवं एक पत्नीव्रती हैं। इस तरह तुलसीदास ने राम तथा राम परिवार लक्ष्मण, भरत तथा सन्त आदि चरित्रों के माध्यम से व्यक्ति के नैतिक जीवन का सुन्दर चित्र खींचा है। भारतीय संस्कृति के परमोपासक कवि तुलसीदास ने अपने काव्य में वर्णाश्रम व्यवस्था एवं संस्कार को मर्यादित एवं नैतिक जीवन के लिए अनिवार्य माना। आश्रम धर्म की मर्यादा के पालन का तुलसी ने कट्टरता से समर्थन किया। वे तत्कालीन समाज की बदलती हुई परिस्थितियों में भी इसमें संशोधन करने के लिए तैयार नहीं है। उनका दृढ़ विश्वास है कि वर्ग के टूटने, आश्रम के लुप्त होने से एक अनैतिक समाज 'कलिराम समाज' फैल गया है। अतः वर्णाश्रम धर्म की पुनः प्रतिष्ठा एवं भक्तिमार्ग की साधना से धर्मराज्य (रामराज्य की पुनः स्थापना हो सकती है। आक्षृत की इस व्यवस्था महात्मा गाँधी ने की इसे हिन्दू धर्म का वैज्ञानिक विभाजन मानकर मुक्तकण्ठ से प्रशसा की है।)

भारतीय संस्कृति के अनुसार सामाजिक जीवन की सफलता एंव परिपूर्णता हेतु नैतिकतापूर्ण पारिवारिक जीवन नितांत अपेक्षित है। तुलसिदास ने कहा है कि पति–पत्नी जीवन रथ के दो चक्के हैं। एक चक्के के टूट जाने पर जीवनरूपी रथ अस्तित्वहीन हो जाता है। इसलिए पारिवारिक जीवन की सुखमयता के लिए पति–पत्नी में पारस्परिक श्रद्धा, विश्वास एवं प्रेमभाव वांछनीय है। सामजिक संगढन तथा पारस्परिक स्नेह के आर्दश रूप गुण–कर्म के सिद्धान्त पर आधारित वर्ण व्यवस्था, अत्यत वैज्ञानिक है। समाज रूपी शरीर का मस्तिष्क ब्राहम्ण्, बाहु.क्षत्रिय उर वैश्य तथा चरण शुद्र –ये चारों अन्योन्यपूरक है। इसमें ऊँच, नीच, घृणा तिरस्कार की कल्पना नहीं। अपने–अपने कर्म के तथा बल के अनुसार ये सब बडे हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल न इस सम्बन्ध में लिखा है कि–'' समाज के लिए वर्ण और आश्रम व्यवस्था भिन्न–भिन्न कर्तव्यों की योजना है, किन्तु उपासना के क्षेत्र में उन्होने सबका समान अधिकार स्वीकार किया है।[70]

राजनीति के क्षेत्र में भी तुलसी ने उदात्त नैतिक भावना पर बल दिया है। उनकी राजनीति मानवता –मुलक है। वह जन शोषण का यंत्र नहीं अपितु लोक – रक्षण एवं सवंर्धन का माध्यम हैं। उसका आधार जन मंगल है। राज शक्ति का नियंता

ऋषि है, जो सर्वस्वत्यागी और अरण्यवासी है। उसमें शस्त्र का एंकांतिक तिरस्कार नहीं। हाँ कम से कम उपयोग करने की स्वीकृति अवश्य है। वह दीनों के दलन पर अधिष्ठित नहीं है, वरन् उन्हें सविशेष आश्रय प्रदान करती है–**'जिन्हहि परमप्रिय खिना** वह भौतिक बल के सम्मुख घुटने को तत्पर नहीं क्योंकि वह धर्मरथ पर चिरारूढ़ है, किन्तु वाह्य उपादानों और भौतिक उपकरणों के प्रति उसे घृणा नहीं। तुलसी काव्य के नायक धर्म संपादन के लिए **'बाप को राज' 'बटाअ की नाई'** छोड देते हैं। राम और भरत के बीच राज्य फुटबाल – सदृश निरूपाय दृष्टिगत होता है। जनता ने राज्य के लिए भाई को भाई और पुत्र का गला काटते देखा। राजनीति मानवता शून्य हो कर शमशान की वीभत्सा प्रचारित कर रही थी। ऐसे में तुलसी ने नाम–राज्य ने दैहिक, दैविक एवं भौतिक तापों का दूर कर वैमनस्य उन्मूलन और धर्मसंस्थापक का उज्जवल उदाहरण रखा। उन्होंने कहा राजा को नीति निपुण एंव प्रजावत्सल होना चाहिए। ऐसा राजा मंगलमूर्ति माना गया है, अन्यथा प्रजा के दुखी होने से राजा नरक का अधिकारी होता है।– रामचरितमानस में वर्णित है– कि

''जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृत अवीस नरक अधिकारी।[71]

अतः स्पष्ट है कि तुलसी जिस राष्ट्र को अपनी वाणी का विषय बनाने उद्यत हुए उसकी आत्मा राजनीति में बसती है। भारत का प्राण संस्कृति में सन्निहित है। यदि राजनीति उसका सर्वस्व रही होती तो भारत महाकाल के चरणों के नीचे कभी का मसला जा चुका होता और अजायबधर की संग्रहणीय वस्तुओं में परिगणित हो रहा होता। यदि राजनीति में ही उसका प्राण होता तो वह काल–कवल बनने के स्थान पर कालजयी न बना होता। उसकी स्थिति वही होती जो यूनान, मिस्र,रोम, की हुई। भारत ने अगणित आक्रमणों का झेला है पराधीन कभी नहीं हुआ, क्योंकि उसने आक्रांताओं के विरूद्ध अपनी विरोधग्नि को किसी काल खण्ड़ में भी बुझने नहीं दिया। तथापि उसका जीवन तरू निरंतर हरा–भरा रहा झंझावत उसे उखाड़ न सकें। वह राजनीति पर हावी रहा। तुलसीदास के कलियुग वर्णन में तत्कालीन मुगलवंश के शासन प्रतिच्छाया अनायास मिल सकती है और वन–वन भटकते राम में मुगल साम्राज्य के विरोधी महाराणा प्रताप का प्रतिबिम्ब। तुलसी पश्चिम के अर्थ में राजनीति के प्रवक्ता न होकर राष्ट्रनीति के निर्देशक है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति के विरूद्ध छेडे गए शीतयुद्ध में तुलसी का

काव्य अमोघ रामबाण सिद्ध हुआ है। भारत के इतिहास में काव्य का अभेद्यरक्षा–कवच देकर तुलसी ने अपना असाधारण स्थान बना लिया था। जनता उन्हें भारतीय संस्कृति के पुरस्कर्त्ता, समुदधर्त्ता और संरक्षक के रूप में सदैव स्मरण करेगी।

निष्कर्षः–

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि संस्कृति शब्द ''सम'' उपसर्ग पूर्वक ''कृ'' धातु से ''सूट'' प्रत्यय का आगम तथा कितन् प्रत्यय लगाकर बनता है जिसका शाब्दिक अर्थ–''संशोधन करना'' है। अनेक विद्धानों की परिभाषा के आधार पर किसी देश के रहन–सहन, आचार–विचार, रीति–रिवाज, ज्ञान–विज्ञान के ढंग, रूचि एवं परम्परागत मान्यताओं को ही संस्कृति कहा जा सकता है। संस्कृति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है जिसका मुख्य उद्देश्य परिष्कार तथा सर्वागीण रूप में मानवीय संवेदनाओं को अनुप्रणित करना है। वस्तुतः सत्यम् शिवम एंव सुन्दरम से युक्त क्रिया कलाप ही संस्कृति है। संस्कृति और सभ्यता का गहन सम्बन्ध है। संस्कृति मानव समाज के मन और मस्तिष्क में रहने वाले सूक्ष्म विचारों की समष्टि है। जबकि सभ्यता उसका प्रत्यक्ष समाजिक रूप है। सभ्यता अंश है और संस्कृति अंशी फिर भी एक दूसरे से इतने अधिक जुड़े हुए हैं कि एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही संदेह में पड़ जाता है। साहित्य और संस्कृति का अटूट सम्बन्ध है कोई भी साहित्यकार जिस राष्ट्र में रहकर साहित्यिक रचना करता हैं वहाँ का इतिहास तथा सामाजिक व्यवस्था, राजनीति, दर्शन, शिक्षा, कला आदि सबसे प्रभावित रहता है। तुलसी काव्य में तो भारतीय संस्कृति की अनुपम छटा ही प्रदर्शित होती है जिसमें उन्होंने भारतीय परम्पराओं का पुर्नअन्वेषण तथा पुर्नव्याख्यान कर आदर्श राजा व राज्य तथा राजनीतिक व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था का चित्रण किया है।

*****

संदर्भ–सूची

1. नरदेव शास्त्री– सम्मेलन पत्रिका लोक संस्कृति अंक का लेख, पृ0 5
2. डा0 ताराचन्द पाण्डेय– कल्याण का हिन्दू संस्कृति विशेषांक, पृ0 145
3. रामधारी सिंह दिनकर– संस्कृति के चार अध्याय, उदयांचल प्रकाशन पटना, संस्करण 1956, पृ0 5
4. छान्दौग्योपनिषद्, सं0वि0प्र0 लिमये, वैदिक संशोधन मण्डल,पूना, 8/4/19
5. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ द सोशल साइन्सेज भाग 3–4, पृ0 419
6. ब्रान्सिला मैलिनावस्की– 'कल्चर एण्ड सोसायटी', पृ0 419
7. ई0 टायलर– ' प्रिमिटव कल्चर' भाग–1 संस्करण 1903, पृ0 1
8. डॉ0 बलदेव प्रसाद मिश्र–भारतीय संस्कृति को गोस्वामी तुलसीदास का योदान, लोकभारती प्रकाशन महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, संस्करण 1985,पृ0 1
9. डॉ0 ताराचन्द पाण्डया– कल्याण का हिन्दू संस्कृति अंक, पृ0 24
10. धीरेन्द्र वर्मा– हिन्दी साहित्य कोश भाग–1 ज्ञानमण्डल बनारस, पृ0 801
11. नगेन्द्र वसु– व्रहत हिन्दी कोश, पृ0 1390
12. डॉ0 ताराचन्द पाण्डया– कल्याण का हिन्दू संस्कृति अंकख पृ0 25
13. रामधन शास्त्री– भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, शारदा मन्दिर बनारस, 1979, पृ0 1
14. मथुरा लाल शर्मा– आर्य संस्कृति के मूलाधार, शिवलाल कम्पनी आगरा, 1985, पृ0 414–415
15. डॉ0 पी0के0 आचार्य 'कल्चर एन्वायरमेन्टलोजिकली' पृ0 290
16. डॉ0 रघुवीर, अनुवाद इंगलिश डिक्शनरी, पृ0 447
17. वही, पृ0 89
18. ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, पृ0 437
19. डॉ0 ताराचन्द पाण्डया– कल्याण का हिन्दू संस्कृति विशेषांक, पृ0 41

20. डॉ0 भागीरथ मिश्र– मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति भारती, भण्डार लीडर प्रेस प्रयाग 1979, पृ0 6
21. बिशम्बरनाथ त्रिपाठी अनुवाद– स्वतंत्रता और संस्कृति, पृ0 53
22. डॉ0 द्वारका प्रसाद सक्सेना– कामायनी के काव्य संस्कृति और दर्शन, पृ0 295
23. रामधारी सिंह दिनकर– संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, 1962, पृ0 653
24. वही, पृ0 361
25. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी– अशोक के फूल, पृ0 64
26. अमर उजाला, दादा धर्माधिकारी का लेख, 15.10.2010 संस्करण, नई दिल्ली, पृ0 10
27. डॉ0 मंगलदेव शास्त्री– भारतीय संस्कृति का विकास ' राजकमल प्रकाशन' नई दिल्ली 1965, पृ0 64
28. डॉ0 रतनचन्द्र शर्मा– मुगलकालीन सगुण भक्ति काव्य का सांस्कृतिक विश्लेषण, जयपुर पुस्तक सदन जयपुर, 1979, पृ0 3 उद्वत
29. वही,पृ0 4 उद्वत
30. वही, पृ0 4 उद्वत
31. वही, पृ0 5–6
32. डॉ0 गुलाबराय– भारतीय संस्कृति की विशेषतायें, पृ0 1
33. डॉ0 श्यामसुन्दरदास– हिन्दी शब्द सागर, पृ0 341
34. डॉ0 सरनाम सिंह शर्मा– सिद्धांत और समीक्षा, पृ0 14
35. डॉ0 बलदेव प्रसाद मिश्र– भारतीय संस्कृति को गोस्वामी तुलसीदास का योगदान, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, 1998, पृ0 9
36. एन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोसल साइंस, पृ0 621
37. डॉ0 ताराचन्द पाण्डया– कल्याण हिन्दू संस्कृति का अंक, पृ0 35

38. डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल– कला और संस्कृति, पृ01

39. डॉ0 पी0वी0 काणे– धर्मशास्त्र का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, इलाहाबाद, 1984, पृ0 16

40. राहुल सांस्कृत्यायन– बौद्ध संस्कृति, पृ0 3

41. सत्यकेतु विद्यालंकार– भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, श्रीसरस्वती सदन, मसूरी, नई दिल्ली, 2007

42. डॉ0 के0एल0 खुराना– भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, लक्ष्मी प्रकाशन आगरा, 1999, पृ0 2 उद्वत

43. रामधारी सिंह दिनकर– संस्कृति के चार अध्याय, लोक भारती प्रकाशन, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, 1962, पृ0 3

44. यशदेव शल्य– संस्कृतिः मानव कृति की व्याख्या, पृ0 1–2

45. मैकाइवर एण्ड पेज– सोसायटी, पृ0 449

46. टी0एस0 इलियट– 'कल्चर एण्ड सोसायटी, पृ0 21

47. एफ0जे0 ब्राउन– एजुकेशन सोसायटी, पृ0 63

48. एडवर्ड टायलर– प्रिमिऐटिव कल्चर , पृ0 1

49. मैकाइवर एण्ड पेज– सोसायटी, पृ0 449

50. डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी– विचार और विर्तक, पृ0 125

51. डॉ0 रतनचन्द शर्मा– मुगलकालीन सगुण भक्ति काव्य का सांस्कृतिक विश्लेषण, जयपुर पुस्तक सदन, जयपुर, 1979, पृ0 8 उद्वत।

52. वही, पृ0 8–10 पर उद्धत

53. डॉ0 सरनाम सिंह शर्मा– साहित्य, सिद्धांत और समीक्षा, पृ0 21

54. रामधारी सिंह दिनकर– संस्कृति के चार अध्याय, उद्यांचल प्रकाशन पटना, 1956, पृ011

55. डॉ0 प्रशन्न कुमार आचार्य– सम्मेलन पत्रिका लोक संस्कृति का अंक, पृ0 28

56. डॉ0 रतनचन्द्र शर्मा– मुगलकालीन सगुण भक्ति काव्य का सांस्कृतिक विश्लेषण, जयपुर पुस्तक भण्डार, जयपुर, 1979, पृ0 5 उद्धृत

57. रामधारी सिंह दिनकर– 'संस्कृति के चार अध्याय' उद्यांचल प्रकाशन पटना, 1956, पृ0 360

58. वही, पृ0 361

59. वही, पृ0 365

60. डॉ0 प्रशन्न कुमार आचार्य– सम्मेलन पत्रिका लोक संस्कृति अंक, पृ0. 28

61. डॉ0 मदनपाल गुप्त– मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति राधा पब्लिकेशन, आगरा, 1998, पृ0 41

62. डॉ0 देवराज– हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमण्डल बनारस, 1977, पृ0 801

63. डॉ0 रामानन्द तिवारी– भारतीय काव्य का स्वरूप, पृ0 34

64. डॉ0 बलदेव प्रसाद मिश्र– भारतीय संस्कृति को गोस्वामी तुलसीदास का योगदान, पृ0 34

65. डॉ0 सरनाम सिंह शर्मा– साहित्य सिद्धांत और समीक्षा, पृ0 19

66. डॉ0 रमेश तिवारी– हिन्दी उपन्यास, साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ0 21

67. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद– साहित्य शिक्षा और संस्कृति, पृ0 10

68. डॉ0 भगवानदासशरण– तुलसी काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि मानस चतुरशती आयोजन समिति सम्भल, 1974, पृ0 141

69. आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा– तुलसी साहित्य विवेचन और मूल्यांकन नेशनल पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली, 1981, पृ0 109

70. पं0 रामचन्द्र शुक्ल– हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी,पृ0 115

71. तुलसीदास– रामचरित्रमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, सं0 2029, अयो0/7/ 195